

डार्विन के जन्मदिन पर विशेष

जीव विकास का सिद्धांत – डार्विन और वाद-विवाद

डॉ अमृत

बीते वर्ष 2009 के 12 फरवरी के दिन, मानव प्रकृति विज्ञानी चार्ल्स डार्विन का दो सौवां जन्मदिन था और संयोगवश 150 साल पहले ही नवम्बर 1859 में ही मनुष्य की वैज्ञानिक समझ का एक मील पत्थर चार्ल्स डार्विन द्वारा लिखित पुस्तक 'जीवों की उत्पत्ति' छपी थी। इन दोनों ही ऐतिहासिक दिनों की याद को समर्पित 2009 का वर्ष, डार्विन के सिद्धांत को आम लोगों में प्रचारित करने और इस पर हो रहे हमलों का जवाब देने के लिए पूरी दुनिया में मनाया गया। इन कार्यक्रमों की समाप्ति 12 फरवरी 2010 को होगी। इसके अलावा पिछले कुछ सालों में 12 फरवरी का दिन डार्विन दिवस के तौर पर भी मनाया जाता है।

डार्विन के जीवन का संक्षेप ब्यौरा

चार्ल्स डार्विन का जन्म 12 फरवरी 1809 को इंग्लैंड के शहर सरयुस्बरी में हुआ। उनके पिता पेशे से डॉक्टर थे और दादा इरासमस डार्विन एक प्रकृति दार्शनिक, डॉक्टर और कवि थे। पिता की इच्छा थी कि डार्विन डॉक्टर बनें लेकिन उनकी रुचि प्रकृति विज्ञान में थी। 1828 में पिता ने डार्विन को पादरी बनाने के लिए क्राईस्ट कॉलेज, कैम्ब्रिज में दाखिल करवा दिया। यहाँ उनका मेल वनस्पति विज्ञान के प्रोफेसर स्टीवन हैन्सलो से हुआ और वहाँ काम करने लगे। डार्विन पहले ही लामारक के जीव विकास सम्बन्धी विचारों को पढ़ चुके थे और अब इनकी रुचि और भी बढ़ गयी। इसी दौरान वह प्रकृति का ध्यान से निरीक्षण करने में लग गये और कीड़े मकौड़े तथा पौधे एकत्रित करने में जुट गये। 1831 में उनकी पढाई पूरी हो गयी।

इंग्लैण्ड में विभिन्न स्थानों पर प्रकृति का निरीक्षण करने के लिए घूमते-घूमते, उनके प्रोफेसर हैन्सलो ने, उनकी सिफारिश एक सर्वेक्षण करने जा रहे जहाज पर बतौर प्रकृति विज्ञानी कर दी। डार्विन के पिता ने इनकार कर दिया, लेकिन आखिरकार डार्विन ने किसी न किसी तरह उन्हें अपनी यात्रा का खर्च उठाने के लिए मना ही लिया और 27 दिसंबर, 1831 को डार्विन एच. एम. एस. बीगल नामक जहाज पर सफर के लिए निकल पड़े। किसे पता था कि यह सफर जीव विज्ञान के क्षेत्र में क्रांति लाने वाला है और पृथ्वी पर मौजूद जीवों और पौधों की उत्पत्ति और विभिन्नता के बारे में मनुष्य की सदियों पुरानी अवधारणाओं को सदा के लिए बदलने वाला है।

अपने समुद्री सफर के दौरान डार्विन ने तथ्यों का भण्डार इकट्ठा कर लिया और अक्टूबर 1836 में इंग्लैंड वापिस आने पर अध्ययन में जुट गये। उनके द्वारा पृथ्वी की संरचना संबंधी लिखे गये लेखों की वजह से, वह अपनी यात्रा से लौटने से पहले ही काफी प्रसिद्ध हो चुके थे। वापसी पर उनके संबंध उस समय के कई बड़े-बड़े विज्ञानियों से बन गये और वे कई साइंस सोसायटियों के मैम्बर चुने गये। अपने सफरनामे के बारे में किताब लिखते वक्त बहुत ज्यादा मेहनत के दबाव के चलते 1838 में वे बीमार हो गये और डॉक्टरों के कहने पर उन्हें लन्दन वापिस अपने पिता के घर जाना पड़ा। पर यहाँ भी उनकी खोजी रुचि कायम रही। वह अपना ज्यादा समय दुधारू पशुओं को पालने वाले किसानों के साथ बातें करते हुए और उनके द्वारा पशुओं की नसल सुधार के कामों का निरीक्षण करते हुए बिताते थे। हृदयस्पंदन और जठरीय रोग के दर्दों की ये बीमारी इसके बाद डार्विन का उम्र भर पीछा करती रही।

अपने अध्ययन के आरंभिक वर्षों में ही, डार्विन जीव विकास संबंधी अपनी दो महत्वपूर्ण अवधारणाओं का विकास कर चुके थे। ये दो अवधारणाएं- 'प्राकृतिक चयन(Natural Selection) और 'योग्यतम का बचाव(Survival of the fittest) थी। डार्विन की अवधारणाओं ने यह पक्के तौर पर सिद्ध कर देना था कि प्रकृति पल-पल बदलती है। यह अपने आरम्भकाल से एकसमान नहीं रही जैसाकि उस समय की धार्मिक शिक्षाओं में बताया जाता था। डार्विन को पता था कि उसकी खोजों का समाज के कठमुल्लों की तरफ से भयंकर विरोध किया जायेगा। कुछ इस डर की वजह से और कुछ अपनी खोजों को प्रमाणिक तौर पर और मजबूत बनाने के लिए प्रकृति में से तथ्य इकट्ठे करने और अध्ययन करने के कारण डार्विन 1859 तक अपनी इस क्रान्तिकारी खोज को प्रकाशित न कर सके।

1856 के शुरुआती दिनों में चार्ल्स डार्विन के दोस्त चार्ल्स लिल को एक और विज्ञानी अल्फ्रेड वालेस का पत्र मिला जिस में वालेस ने डार्विन की अवधारणाओं के साथ मिलती जुलती बातें कहीं। इसके बाद लिल ने डार्विन को अपनी खोजों को छपवाने के लिए कहा और उसके कहने पर डार्विन ने, जीवों की प्रजातियों की उत्पत्ति(Origin of Species) से सम्बंधित एक खोज पत्र लिखना शुरू किया। जून, 1858 में डार्विन को वालेस का पत्र मिला जिसमें उसने 'प्राकृतिक चयन' की धारणा का जिक्र किया। 1859 में 1 जुलाई के दिन, डार्विन और वालेस ने इकट्ठे ही अपनी खोजों के बारे में खोज पत्र पढ़ने का निर्णय किया, पर अपने बेटे की मृत्यु की वजह से डार्विन इसमें शामिल न हो सके। आखिरकार नवम्बर में डार्विन ' **जीवों की उत्पत्ति**(Origin of Species) छप कर लोगों में पहुँच गयी।

जैसाकि उम्मीद ही थी, किताब की काफी प्रशंसा हुई और कुछ ही दिनों में इसके पहले संस्करण की सारी प्रतियाँ बिक गयीं। वैज्ञानिकों में बहुतों ने डार्विन की उपलब्धियों के साथ सहमती प्रकट की, चाहे कुछ वैज्ञानिकों ने डार्विन की अवधारणाओं का सख्त विरोध भी किया। सबसे ज्यादा भयानक विद्रोह धार्मिक कठमुल्लों और कट्टरपंथियों ने किया और डार्विन के भेदे कार्टून बना कर बाँटे गये। जब डार्विन ने यह रहस्योद्घाटन किया कि मनुष्य का विकास बंदरों की एक नसल एप (Ape) से हुआ है तो इसका प्रचंड विरोध हुआ। डार्विन का चेहरा बन्दर के धड़ के ऊपर लगा कर उसकी खिल्ली उड़ाई गयी। लेकिन उनकी खोजों के बढ़ते प्रभाव को देखते हुए कट्टरपंथी चर्च ने अब उसकी खोजों को अपने धार्मिक लबादे में फिट करना शुरू कर दिया।

अपने खोज कार्य जारी रखते हुए, डार्विन ने इसके बाद 'मनुष्य की उत्पत्ति(Descent of Man) और अन्य कई किताबें लिखीं। 19 अप्रैल, 1882 के दिन 73 वर्ष की उम्र में इस महान विज्ञानी की मृत्यु हो गयी जो अपने पीछे छोड़ गया मानवता को अपनी बेमिसाल उपलब्धियाँ।

डार्विन की उपलब्धियाँ

एच. एम. एस. बीगल के साथ अपने समुद्री सफर के दौरान डार्विन ने अनेक महत्वपूर्ण तथ्य इकट्ठे किये। गैलापैगोस टापू पर उनका ध्यान घरेलू चिड़ियों जैसे पक्षियों की एक नस्ल पर गया। इन पक्षियों की शक्ल-सूरत आपस में काफी मिलती जुलती थी और ये पक्षी मुख्य धरती पर पाए जाने वाले इसी किस्म के पक्षियों से भी मिलते जुलते थे। पर टापुओं पर रहने वाले पक्षी कीड़े खाकर गुजारा करते थे जबकि दक्षिण अमेरिका की मुख्य धरती वाले पक्षी पौधों के बीज खाते थे। कीड़े खाने वाले पक्षियों की चोंच बीज खाने वाले पक्षियों से लम्बी थी। अतः डार्विन ने यह परिणाम निकला कि किसी कारणवश यह पक्षी मुख्य धरती से टापुओं पर आ गए। बदलते हालात में जीवन निर्वाह के लिए उन्हें कीड़ों पर निर्भर होना पड़ा। लेकिन आम तौर पर कीड़े वृक्षों के तनों में गहरे छुपे होते थे, अतः समयानुसार टापुओं पर लम्बी चोंच वाले पक्षी अस्तित्व में आ गए।

इसी तरह उन्होंने दक्षिणी अमेरिका के तट के साथ साथ एक दक्षिण अमेरिकी जानवर 'सलौथ' के अवशेषों का अध्ययन किया। इन आलोप हो चुके जानवरों का आकार हाथी जितना था, परन्तु उस समय के अमेरिकी सलौथों का आकार काफी छोटा था, डार्विन ने अपने अध्ययन से यह परिणाम निकला कि छोटे आकार के सलौथ आलोप हो चुके सलौथों से ही विकसित हुए हैं।

इस तरह डार्विन ने उस समय तक खोजे गए विभिन्न अवशेषों का अध्ययन किया। उनके समय तक

अवशेषों पर खोज करने वाले वैज्ञानिकों को धरती कि सतह पर चट्टानों की अलग अलग परतें मिलीं और प्रत्येक परत में अलग अलग किस्म के जानवरों और पौधों के अवशेष मिले । डार्विन ने अपने अध्ययन से यह जाना कि नीचे की परत से ऊपर की तरफ आते हुए, इन परतों में जानवरों और पौधों के विकास का सिलसिला सीधा-सीधा नजर आ रहा था । उस समय तक यह भी पता लग चुका था कि चट्टानों की एक परत जमने में लाखों साल लग जाते हैं । इससे डार्विन का यह निश्चय पक्का हो गया कि धरती पर जीवन हमेशा एक जैसा नहीं रहा है, और यह बदलता रहा है । डार्विन इस नतीजे पर भी पहुँच गए कि जीवन की उत्पत्ति किसी सरल रूप में हुई और इस सरल रूप से विकसित होते हुए जीवों और पौधों की अलग अलग प्रजातियाँ अस्तित्व में आयीं और इस प्रक्रिया में लाखों वर्ष लगे। आज वैज्ञानिक यह जान चुके हैं कि धरती की उम्र लगभग 4.5 बिलियन वर्ष है । जीवन के प्रथम प्रारूप 3.5 मिलियन वर्ष पहले अस्तित्व में आये । मनुष्य का जनम कोई एक लाख वर्ष पहले ही हुआ है ।

अपने पुश्तैनी घर में रहते समय डार्विन ने देखा कि किसान ज्यादा दूध देने वाले पशुओं का चयन करके और उनका प्रजनन करवाकर ज्यादा दूध देने वाले पशुओं की गिनती बढ़ा लेते हैं । उन्होंने इसको 'कृत्रिम चयन(Artificial Selection) का नाम दिया । लेकिन उन्होंने इससे आगे चलते हुए अपने पास उपलब्ध अन्य तथ्यों के आधार पर यह सिद्धांत दिया कि प्रकृति में भी इस तरह की 'प्राकृतिक चयन' की प्रक्रिया घटित होती है ।

इसको एक सरल उदाहरण से समझा जा सकता है । एक खास किस्म का उड़ने वाला कीड़ा पक्षियों द्वारा खाया जाता है । इस कीड़े की दो किस्में हैं – एक सफ़ेद पंखों वाला जो जहरीला नहीं है और दूसरा चमकीले रंगों वाला जहरीला कीड़ा । धीरे धीरे पक्षी पंखों के रंग से जहरीले कीड़े को पहचानने लगते हैं और उसे खाना बंद कर देते हैं । शुरू में चमकीले पंखों वाले कीड़ों की गिनती काफी थी, लेकिन कुछ ही पीढ़ियों बाद चमकीले रंग वाले कीड़ों की बहुतायत हो जाएगी क्योंकि उनके पास प्रजनन करने के और अपने से आगे नए कीड़े पैदा करने के मौके सफ़ेद पंखों वाले कीड़ों से तुलनात्मक रूप में ज्यादा हैं । इस तरह चमकीले पंखों वाले कीड़े प्राकृतिक चयन के ज़रीये बहुतायत में आ जाते हैं ।

इस तरह डार्विन ने देखा कि प्रकृति में जीव जन्तु बहुत ज्यादा बच्चे पैदा करते हैं लेकिन प्रत्येक जीव प्रजाति की संख्या को नियंत्रण में रखने के लिए किसी तरह का कोई नियम होना जरूरी है । यही से उन्होंने अपने दूसरे, जो कि मुख्य रूप में विवाद का कारण बना, 'योग्यतम के बचाव' के सिद्धांत को रूप दिया । उनके मुताबिक वातावरण की परिस्थितियों के अनुसार सबसे योग्य जीव 'जिंदा रहने के संघर्ष' में कामयाब हो जाते हैं और प्रजनन कर पाते हैं और बाकी मर जाते हैं । इस तरह जिंदा रहने के लिए लाभकारी गुण चुनिन्दा रूप में अगली पीढ़ियों में चले जाते हैं ।

इन दोनों सिद्धांतों के आधार पर डार्विन ने यह नतीजा निकाला कि लाभकारी लक्षणों और वातावरण के अनुसार ढलने के लिए जीवों में आये बदलाव, जो कि पीढ़ी दर पीढ़ी जीवों में संचारित हो सकते हैं, इकट्ठे होते रहते हैं और समय आने पर एक बिलकुल ही नयी प्रजाति के अस्तित्व में आ जाने का कारण बनते हैं ।

डार्विन के सिद्धांतों की अपनी खामियां भी हैं । लेकिन फिर भी डार्विन के सिद्धांत आधुनिक जीव विकास के सिद्धांत की बुनियाद हैं । उनके दिए गए सिद्धांतों के बिना आज भी किसी जीव विकास के सिद्धांत की कल्पना संभव नहीं । डार्विन की सबसे बड़ी और महत्वपूर्ण देन थी, संसार के सदा-सदा स्थिर रहने वाली अवधारणा का सदा सदा के लिए अंत ! यही बात डार्विन के विरोधियों को सबसे ज्यादा चुभती है ।

इन सिद्धांतों के अलावा डार्विन की मानवता को और भी बहुत महत्वपूर्ण और क्रांतिकारी देन है । डार्विन के दोस्त, टॉमस हक्सले ने उस समय दिखाया कि शारीरिक रचना के पक्ष से मनुष्य बहुत हद तक ऐप (Ape) के साथ मिलता जुलता है । 1871 में डार्विन ने अपनी पुस्तक 'मनुष्य का विकास' प्रकाशित की । इस पुस्तक में उसने मनुष्य की सांस्कृतिक विकास और मनुष्यों में पाए जाने वाली लैंगिक, शारीरिक, और सांस्कृतिक विभिन्नताओं की व्याख्या के लिए 'लैंगिक चयन' का सिद्धांत पेश

किया। इस पुस्तक में उन्होंने जोर दिया कि सारे मनुष्य एक ही पूर्वज से विकसित हुए हैं और यह विकास अफ्रीका महाद्वीप में हुआ। उस समय अलग-अलग नस्ल के मनुष्यों को अलग अलग प्रजातियाँ मानने और कुछ नस्लों को दूसरी नस्लों से बेहतर मानने और उनके अलग-अलग तौर पर विकसित होने के सिद्धांतों का काफी बोलबाला था, लेकिन डार्विन के द्वारा एक ही पूर्वज से सारे मनुष्यों के विकास के सिद्धांत को पेश करने के बाद बाकी सिद्धांत धीरे धीरे प्रभावहीन हो गए। डार्विन के सिद्धांत की प्रौढ़ता अब डी.एन.ए. के अध्ययन से भी हो चुकी है।

डार्विन के आलोचक

जैसे ही डार्विन ने, बाईबल की अवधारणा, कि धरती की उम्र 6000 साल है और संसार की रचना परम परम 6 दिनों में और सदा सदा के लिए की थी, पर चोट की और इसको अपनी खोजों द्वारा तीतर-बीतर कर दिया; तो धार्मिक कट्टरपंथियों ने उसके खिलाफ जेहाद छेड़ दी। लेकिन अब समय बदल चुका था, अब मध्य युग का सामंती ढांचा नहीं रहा था, अब पूंजीवादी ढांचा अस्तित्व में आ चुका था, और विज्ञान की जरूरत उसके लिए जिंदा रहने की शर्त था, इसलिए थोड़े ही समय में डार्विन के सिद्धांतों को वैज्ञानिकों की तरफ से मान्यता मिल गयी। अब डार्विन के सिद्धांत को पूंजीवादी प्रबंध को सही साबित करने के लिए इस्तेमाल किया जाने लगा और उसके क्रांतिकारी अंश को को छुपाने की कोशिशें होने लगीं।

'अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष' और 'योग्यतम का बचाव' नामक डार्विन की अवधारणाओं को पूंजीवादी प्रबंध को जायज ठहराने के लिए इस्तेमाल किया जाने लगा और आज भी इसी प्रकार की दलीलें देने वालों की कमी नहीं है। लेकिन ये सिद्धांतकार 'अपने अस्तित्व के लिए सर्वहारा के संघर्ष' से भी उतना ही डरते हैं जितना जोर ये पूंजीवाद को जायज ठहराने के लिए लगाते हैं। 'योग्यतम का बचाव' के सिद्धांत द्वारा पूंजीवादी शोषकों को जायज ठहराने और अल्पमत द्वारा विशाल बहुमत की लूट को ठीक सिद्ध करने की कोशिशें लगातार होती रही हैं। पर यह राग अलापने वाले जन संघर्ष की जगह शान्तिपूर्ण सुधारों और कानूनी कार्रवाई द्वारा गरीबी खत्म करने जैसे भद्दे सिद्धांतों को भी साथ-साथ पेश करते रहते हैं। इन दलीलों के बिना भी देखा जाये तो दूसरे जानवरों और मनुष्यों में बहुत अंतर है। मनुष्य वातावरण के साथ खुद भी बदलता है और उसे भी अपने अनुकूल ढाल लेता है, जबकि यह गुण दूसरे जानवरों में बहुत कम विकसित है। इसके अलावा मनुष्य उत्पादन प्रक्रिया में प्रकृति के साथ संघर्ष करता है और जीवन निर्वाह के लिए औजारों का निर्माण करता है। और चूँकि यह सब सामूहिक रूप में ही संभव है, इसलिए 'योग्यतम का बचाव' की अवधारणा मनुष्यों पर लागू ही नहीं होती और तो और, पूंजीवादी प्रणाली में जब भी इन औजारों की (बहुतायत) हो जाती है तो संकट आ जाता है, फिर बहुतायत होने के बावजूद संघर्ष की अवधारणा की तो इसमें कोई गुन्जाईश ही नहीं रह जाती।

इससे भी बढ़कर, डार्विन की यह अवधारणा मुख्य तौर पर अलग अलग जीवों की प्रजातियों और किसी जीव प्रजाति की जनसंख्या को कंट्रोल में रखने तक ही सीमित रहती है। पहली सूरत में यह अवधारणा मनुष्यों में आपस में लागू नहीं होती, दूसरी सूरत में, जिन यूरोपीय देशों की जनसंख्या वृद्धि दर शून्य हो चुकी है पूंजीवादी दैत्य वहां भी लोगों को संघर्ष करने के लिए मजबूर कर रहा है। जिन देशों में जनसंख्या बढ़ रही है, वहां डार्विन के योग्यतम के बचाव के सिद्धांत के मुताबिक पूंजीपतियों की संख्या बढ़नी चाहिए, लेकिन हो तो इसके विपरीत रहा है, गरीबों (अयोग्यों) की संख्या बढ़ रही है और पूंजीपतियों की या तो स्थिर है या कम हो रही है।

चर्च और अन्य धार्मिक कट्टरपंथी, जिनमें सिर्फ इसाई ही नहीं, अन्य सभी धर्मों के पादरी-पुजारी भी शामिल हैं, के विरोध और डार्विन के सिद्धांतों को तोड़-फोड़ कर की गयी व्याख्याओं से भी पूंजीवाद का कुछ नहीं संवर सका। इस सबके बावजूद इस पूंजीवादी प्रबंध को डार्विन के सिद्धांतों और पूरे जीव विकास के सिद्धांत से ही खतरा बना हुआ है। एक बार फिर मध्य-युगीन काले दौर के सिरे से खारिज किये जा चुके गैर-वैज्ञानिक ईश्वरवादी संरचना के सिद्धांत को नए लबादे में सजा कर लोगों पर थोपा जा रहा है और लोगों में भौतिकवादी वैज्ञानिक नजरिये की पकड़ को कमजोर करने की कोशिशें हो रहीं

हैं। इन सब कोशिशों के पीछे हर तरह के धार्मिक कट्टरपंथी और फासीवादी ताने-बाने से लेकर सरकारों, कोर्पोरेट जगत, और लोक कल्याण प्रपंच रचने वाली संस्थाएं शामिल हैं।

इस नए प्रचारित किये जा रहे सिद्धांत का नाम है 'सचेतन सृजन(Intelligent Design)। इनके ज्यादातर तर्क तो डार्विन के समकालीन विरोधी विलियम पैले (William Paley) से उधार लिए हुए हैं। इस दलील के अनुसार, जैसेकि किसी जटिल जेब घड़ी या किसी आधुनिक मशीन या कंप्यूटर जैसे यन्त्र बनाने के लिए किसी सचेतन शक्ति यानीकि मानव दिमाग की जरूरत होती है, उसी तरह जैसे किसी बहुत ही जटिल मानव अंग जैसेकि आँख, दिमाग, या अन्य जीव जंतुओं को पैदा करने के लिए या सृजन के लिए भी किसी सचेतन शक्ति की जरूरत है, जोकि इनके अनुसार ईश्वर ही हो सकता है। यह बिलकुल वैसे ही जैसे कोई कहे कि दूध भी पानी की तरह तरल पदार्थ है इसलिए यह पानी की ही तरह धरती में से नल लगाकर निकाला गया होगा या फिर पानी दूध की तरह किसी गाय-भैंस को दुहने से मिलता होगा। खैर इनके तर्क की थोड़ी और छानबीन करते हैं। घड़ी या मशीन बनाने के लिए बहुत सारे मनुष्यों को इकट्ठे होकर या अलग अलग रहकर औजारों का इस्तेमाल करते हुए और भट्टियों में लोहा पिघलाते हुए श्रम करना पड़ता है, और दूसरी तरफ इनके ईश्वर के औजार और भट्टियाँ कहाँ हैं और वह दिखाई क्यों नहीं देते, तो ये भाग निकलेंगे।

इसी तर्क को थोड़ा और आगे लेकर जाइये – घड़ी, मशीन या कंप्यूटर को बनाने वाला सचेतन मानव दिमाग बहुत जटिल है, तो इतने जटिल मानव दिमाग को बनाने वाली शक्ति तो और भी जटिल होगी। फिर इस और भी जटिल शक्ति को बनाने के लिए और भी ज्यादा जटिल शक्ति – और इस यह जटिलता का पहाड़ा कभी न खत्म होने वाला थोथा तर्क बन जाता है।

एक और तर्क के अनुसार जीवाणु (Bacteria) को गति प्रदान करने वाले हिस्से फ्लैजिला (Flagella), मनुष्य की प्रतिरक्षा प्रणाली या उसकी आँख जैसे अंग इतने ज्यादा विकसित हैं कि इनके किसी और कम विकसित रूप से विकसित होने के बारे में सोचा भी नहीं जा सकता और अपने कम विकसित रूपों में इनकी कोई उपयोगिता संभव भी नहीं होगी; यह तर्क भी थोथा सिद्ध किया जा चुका है। जैसे कि आँख के विकास की विभिन्न अवस्थाओं के विकसित रूप जैविक संसार में पाए जाते हैं। कीट-पतंगों में आँखों का इस्तेमाल होता है और उससे कम विकसित प्राणियों में भी। इसी तरह गाय-भैंसों की आँखों की बनावट काफी हद तक मनुष्य की आँखों से मेल खाती है, लेकिन उनमें रंग पहचानने की योग्यता नहीं होती, और वे चीजों को काले और सफ़ेद रंग की अलग शेड्स में ही देख सकती हैं। लेकिन कोई पागल ही यह कहेगा कि उन्हें आँखों का कोई लाभ नहीं या फिर उनकी आँखें बेकार हैं। प्रतिरक्षा प्रणाली भी हर तरह के प्राणी में मौजूद है और फ्लैजिला के विभिन्न स्तरों के विकसित रूप जीवाणु (Bacteria) में पाए जाते हैं। लेकिन जैसेकि प्रत्येक विचारवादी का काम होता है, एक तर्क के प्रमाणित हो जाने के बाद कोई दूसरा कुतर्क ढूँढने की बौद्धिक कसरत में लग जाना। और तो और, इनकी विज्ञान की किताब 'बाइबल' में धरती की उम्र 6000 साल बताई गयी है और सृष्टि के सृजन में ईश्वर को 6 दिन लगे। आज के वैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर धरती की उम्र 4.5 बिलियन वर्ष या इससे भी ज्यादा आंकी गयी है और जीवन की उत्पत्ति के आरंभिक प्रमाण भी 3.5 बिलियन साल पुराने हैं।

एक और काम, जो यह ईश्वरवादी सृजनात्मकता के सिद्धांतकार करते हैं, वह है- वैज्ञानिक सिद्धांतों में किन्हीं छोटी सी त्रुटियों को ढूँढना और फिर उसकी आधार पर पूरे सिद्धांत के ऊपर विवाद खड़ा करना। और इन त्रुटियों को विज्ञान द्वारा दूर कर लेने पर ऐसी ही कोई और तुच्छ कोशिश। यह है नया विज्ञान – जो अपने आप को प्रमाणित करने में असमर्थ है, लेकिन दूसरी सिद्धांतों की छोटी सी त्रुटियों को भी आधार बनाकर हो हल्ला मचाता है। एक और बहुत ही 'शानदार' विचार, जो ऐसे विज्ञानी लोग अक्सर प्रचार करते हैं, वो है- साईंस को ईश्वर भरोसे रहने वाली 'आस्तिक साईंस' बनाना जिससे कि ये समझते हैं कि विज्ञान को और वैज्ञानिकों को बहुत फायदा मिलेगा और विज्ञान को सही दिशा मिलेगी।

इस पूरे 'विज्ञान(?)' को लोगों में प्रचारित करने और लोगों के दिमागों में ईश्वरवादी सृजनात्मकता का कूड़-कबाड़ा ठूसने के काम को पूरा करने के लिए अमेरिका और इंग्लैंड में शक्तिशाली राजनैतिक लाबी हैं, और इसमें कोई हैरानी की बात नहीं इस लाबी का मुख्य हिस्सा राजनैतिक हलकों की दक्षिणपंथी

फासीवादी धारा है। जैसाकि होता ही है फासीवाद को वित्तीय सहायता की भी कोई कमी नहीं है।

यह प्रतिक्रियावादी शक्तियां अमेरिकी सरकार पर लगातार यह दबाव बनाती रही हैं कि धार्मिक विश्वास पर आधारित स्कूलों का खर्च सरकार उठाये, इन स्कूलों में मुख्य तौर पर ईसाई मिशनरी स्कूल हैं। अमीर संस्थाओं ने इस प्रचार मुहिम के लिए लाखों-करोड़ों डॉलर खर्चे। अकेली वाल्टन फैमिली फाउंडेशन ने 2006 में 28 मिलियन डॉलर इस तरह का दबाव बना रहे संगठनों पर खर्च किये। याद रखा जाना चाहिए कि यह फाउंडेशन वाल-मार्ट के सहारे चलती है, जो कि ट्रेड-यूनियनों के सबसे खूंखार विरोधियों में से जानी जाती है।

एक और अमेरिकी संस्था, टेम्पलटन फाउंडेशन ने वर्ष २००६ में ६० मिलियन डॉलर, उन व्यक्तियों के प्रोजेक्टों के लिए बांटे, जो 'विज्ञान' और अध्यात्मवादी विचारों का मेल मिलाप कराने की कोशिशों में जुटे हुए हैं। इन व्यक्तियों में अमेरिका और इंग्लैंड के अलावा पूरी दुनिया के अध्यापक, विद्यार्थी, पत्रकार, शोध-कर्ता और युनिवर्सिटियों के प्रोफेसर, अकादमीशियन शामिल हैं। यू.एस. क्रॉनिकल ऑफ़ हायर एजुकेशन में छपे एक लेख के अनुसार उपरोक्त संस्था ने २५० मिलियन डॉलर से ज्यादा की धनराशी विज्ञान की इस तरह की 'सेवा' के लिए खर्ची। यह संस्था खुले-आम पूंजीवाद तथा मुनाफा आधारित उद्यम की हिमायत करती है।

इस तरह की एक संस्था वार्डी फाउंडेशन ब्रिटेन में काम करती है। यह संस्था मुख्य तौर पर वार्डी कार बिजनैस के मुनाफे पर चलती है। इसका मुख्य काम भी ईसाई मूल्यों और मान्यताओं का प्रचार करना और स्कूल खोलना है। इस संस्था के स्कूलों में ईश्वरवादी सृजनात्मकता को विज्ञान के तौर पर पढ़ाया जाता है।

भारत में भी ऐसी संस्थाएं मौजूद हैं। इनमें से एक है- कृष्णा कान्सैस (चेतना)। यह संस्था भी अपने अन्य कामों के साथ-साथ ईश्वरवादी सृजनात्मकता के सिद्धांत का प्रचार करने के लिए जगह जगह व्याख्यानों का आयोजन करती है और पर्चे बांटती है।

पूंजीवादी प्रतिक्रियावादी शक्तियों के उपाय सिर्फ नए सिद्धांत घड़ने और उनका प्रचार करने तक ही सीमित नहीं हैं, वह पूंजीवादी सत्ता को अपने 'विज्ञान(?)' को लोगों पर थोपने के लिए इस्तेमाल कर रहे हैं। स्कूलों में 'सचेतन सृजनात्मकता' के सिद्धांत को पढ़ाने के लिए अमेरिकी अदालत में केस किया गया। सारे पूंजीपति ऐसे सिद्धांतकारों और ऐसे सिद्धांतों के पक्ष में खड़े हैं। मिसिसिपी, उकलहामा और न्यू मैक्सिको की प्रतिनिधि सभाओं में वर्ष 2009 के दौरान डार्विन के जीव विकास के सिद्धांत को एक 'विवादग्रस्त सिद्धांत' का दर्जा देने या फिर दूसरे सिद्धांतों की शिक्षा देने के बिल दाखिल हो चुके हैं। लुसिआना स्टेट की प्रतिनिधि सभा तो एक ऐसा ही बिल पास भी कर चुकी है और गवर्नर बॉबी जिंदल ने हस्ताक्षर भी कर दिये हैं।

इस तरह की ही लड़ाई टेक्सास में चल रही है, जिसके अनुसार कक्षाओं में अध्यापकों को डार्विन के जीव विकास के सिद्धांत की आलोचना करनी अनिवार्य हो जायेगी। यह सिर्फ अमेरिका तक ही सीमित नहीं, इंग्लैंड में भी ऐसी ही कोशिशें जारी हैं, और यूरोप के कई और देशों में भी बाइबल की उत्पत्ति की धारणा को स्कूलों के सिलेबस में पढ़ाने के उपाय किये जा रहे हैं। भारत में भी वह दिन दूर नहीं, यहाँ भी ज्योतिष को तो पहले ही विज्ञान का दर्जा मिल चुका है।

और तो और कानास यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर पाल मिरेकी को डार्विन के सिद्धांत की प्रौढ़ता करने की वजह से जान से मारने की धमकियाँ दीं गयीं, उसको बुरी तरह पीटा गया जिस वजह से उन्हें अस्पताल दाखिल करवाना पड़ा। उन्हें उस पद से हटा दिया गया और उनसे अपराधियों की तरह पूछताछ की गयी।

आम तौर पर विज्ञान से सम्बन्धित शोध-कार्य या किसी संग्रहालय के निर्माण के लिए कोर्पोरेट जगत चंदा मुहैया करवाता है। लेकिन नवम्बर 2005 में जब 'अमेरिकन मियुसियम ऑफ नैचुरल हिस्ट्री' को नए सिरे से बनाने और जीव विकास के सिद्धांत को लोगों में प्रचारित करने की बात हुई तो किसी भी कोर्पोरेट घराने ने चंदा देने की ज़हमत नहीं उठायी और इस संग्रहालय द्वारा लगाई गयी प्रदर्शनी 'डार्विन' को मीडिया में कोई कवरेज नहीं दी गयी। लेकिन जब 25 मिलियन डॉलर की लागत से

'ईश्वरवादी उत्पत्ति' के संग्रहालय को बनाने की बात चली तो कोर्पोरेट जगत नें दिल खोलकर चंदे मुहैया करवाए । इस संग्रहालय में डायनासोरों को मनुष्यों के साथ रहते हुए दिखाया जा रहा है । इस तरह पढाया जाता है कि भयानक बाढ़ आने से पहले मनुष्य और डायनासोर इकट्ठे धरती पर रहते थे । वैज्ञानिक इस बकवास को कब का रद्द कर चुके हैं । डायनासोर लगभग 63 मिलियन वर्ष पहले धरती से अलोप हो चुके हैं और मनुष्य जैसे पहले प्राणी की उत्पत्ति 4 से 10 मिलियन वर्ष से पुरानी नहीं । यह है वह विज्ञान जिसे पूँजीवाद पढा रहा है और फाईनैस कर रहा है । जबकि पूँजीवादी टहलुये यह डींग मारते नहीं थकते कि पूँजीवाद के बिना विज्ञान का विकास रुक जाएगा ।

नव-डार्विनवाद

एक और छुपा हुआ हमला हुआ है डार्विन के सिद्धांत पर । यह छुपा हुआ इस अर्थ में है क्योंकि यह स्वयं को डार्विन के मानने और फैलाने के चोगे में छिपाकर रखता है, इसका नाम है नव-डार्विनवाद । इसीका ही विस्तारित रूप है, आधुनिक जीव विकास का सिद्धांत ।

नव-डार्विनवाद शब्द का प्रयोग सबसे पहले वीजमैन (Weissman) नाम के विज्ञानी के सिद्धांत के अनुयायियों के लिए किया गया । उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में १८९५ में वीजमैन ने यह सिद्ध किया कि वातावरण के प्रभाव अधीन किसी जीव में होनेवाले बदलाव आगमी पीढ़ी के जीवों में संचारित नहीं हो सकते । इसको वीजमैन की 'जर्म-प्लाज्म थियरी' कहा जाता है । इस सिद्धांत ने मुख्य तौर पर लैमार्क के जीव विकास के सिद्धांत पर चोट की और जीव विज्ञानियों ने लैमार्क के 'वातावरण के प्रभाव के अधीन आनेवाले बदलाव का कारण जीव विकास होने के सिद्धांत' को पूरी तरह रद्द कर दिया । अपने सिद्धांत को सही सिद्ध करने के लिए वीजमैन ने कुछ प्रयोग किये जिनमें चूहों की पूँछें काटने वाला प्रयोग सबसे प्रसिद्ध है ।

वीजमैन के इस प्रयोग में, पीढ़ी दर पीढ़ी चूहों की पूँछें काटी गयी, पर हरवार चूहों की अगली पीढ़ी में पूँछ उग आती थी। इससे उसने यह नतीजा निकाला कि शरीर पर पडनेवाले प्रभाव वंशानुगत तौर पर अगली पीढ़ियों में संचारित नहीं होते। सबसे पहले तो इस प्रयोग में बहुत बड़ी खामियां हैं – जैसेकि जीव विकास प्राकृतिक स्थिति में होता है और उसे बहुत लंबा समय लगता है । दूसरा उस गुण की, जो प्रकृति में संचरण के लिए जीव के लिए लाभदायिक होता है, प्राकृतिक देन होता है । इस प्रयोग को करने से पहले चूहे के लिए पूँछ की उपयोगिता है या नहीं, के बारे में कुछ भी निर्धारित नहीं किया गया । इसके अलावा नये अध्ययनों और खोजों से यह स्पष्ट हो गया है कि शारीरिक तौर पर पडनेवाले बाहरी प्रभाव, एक जीव से उसकी, जहाँ तक कि कई पीढ़ियों तक भी संचारित हो सकते हैं और इससे विज्ञान की एक पूरी शाखा 'एपिजेनेटिक्स' अस्तित्व में आ गयी है।

वीजमैन की 'जर्म-प्लाज्म थियरी' और डार्विन की 'प्राकृतिक चुनाव' को आधार बनाकर ही आधुनिक जीव विकास अस्तित्व में आया । इस सिद्धांत के अनुसार जीवों में आये अलग-अलग बदलावों में कुछ बदलाव, जो जीव के लिए वातावरण में संचरण और अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए सहायक सिद्ध होते हैं, प्रकृति द्वारा चुन्न लिए जाते हैं । भाव कि जिस जीव में ये लाभदायिक बदलाव आते हैं, उस जीव को वातावरण में जिंदा रहने का ज्यादा मौका मिलता है और इसलिए उस द्वारा प्रजनन करने के अवसर भी ज्यादा होते हैं और धीरे-धीरे बदलावों वाले जीवों की गिनती मुख्य हो जाती है और समय पाकर और बदलावों के जमा होते जाने के कारण एक नयी प्रजाति अस्तित्व में आ जाती है । यहाँ तक बिलकुल डार्विन के सिद्धांतानुसार है। पर आधुनिक जीव विकास संबंधी सिद्धांतानुसार बदलावों के आने का कारण वातावरण और हालात अनुसार स्वयं को ढलने की जीव की जरूरत नहीं, बल्कि बदलाव जीव के जीनस में संयोगवश होनेवाले आकस्मिक परिवर्तन हैं । इस प्रकार नव-डार्विनवादी प्राकृतिक परिस्थितियों का जीव पर पडनेवाले प्रभावों से बिलकुल मुकर जाते हैं । यहां से शुरू हुआ यह विचारवादी तर्क बढ़ता हुआ यहाँ तक चला जाता है कि मानव की बनावट और स्वभाव सबकुछ पहले ही निश्चित है और इसे मानव की सामाजिक परिस्थितियों को बदलने से बदला नहीं जा सकता और ऐसा करने के प्रयत्न गैर-वैज्ञानिक और प्रकृति के विरुद्ध हैं और डार्विन विरोधी हैं । नव डार्विनवादी परम्परा में से मुख्य हैं – रिचर्ड डकिंस और स्टीवन पिंगर ।

बीसवीं शताब्दी के पिछले अर्द्ध की महत्वपूर्ण खोज पीढ़ी दर पीढ़ी जीवों की बनावट और अन्य लक्षणों संबंधी सूचना संचारित करनेवाला रसायन डी.एन.ए. हैं. १९५३ में वाटसन और क्रिक ने डी.एन.ए. की बनावट का मॉडल विकसित कर लिया और इसके बाद जीनज की खोज हुई. जीन डी.एन.ए. एक विशेष प्रकार से डिजाईन किया गया और यह शरीर के किसी एक हिस्से या लक्षण संबंधी सूचना जमा रखता है, एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक यह सूचना संचारित करता है, जैसे आँखों का रंग, आदमी का कद, चमड़ी का रंग, जीव के बालों का रंग आदि. जीन कोशिका के केन्द्रक (नीयूक्लियस) में पड़े रहते हैं और कोशिका की क्रियाओं को रेगुलेट करते हैं। इस खोज के पश्चात कुछ विज्ञानियों ने प्रत्येक मानवी क्रिया चाहे वह शारीरिक हो, मानसिक या सामाजिक, का आधार जीन के रूप में डी.एन.ए. के टुकड़े को बना दिया। जीव विकास होता है तो जीनों में सांयोगिक बदलावों से होता है, कोई मनुष्य अपराध कर लेता है तो उसके जीन में नुक्स है, अगर कोई उच्च शिक्षा प्राप्त कर लेता है तो उसके जीन बेहतर हैं, अगर कोई आलिशान घर में रहता है, तो उसके जीन ही इतने काबिल हैं, अगर कोई पूंजीपति अमीर बनता जा रहा है और मजदूर दिन प्रतिदिन गरीब तो अमीर पूंजीपति के जीन गरीब मजदूर के जीनों से बेहतर हैं, अगर किसी को क्रोध अधिक आता है तो उसमें क्रोध वाले जीन अधिक हैं इत्यादि।

रिचर्ड डकिंज ने मानव की संस्कृति और स्वभाव की व्याख्या करने हेतू एक नया सिद्धांत पेश किया, कि हर व्यक्ति में स्वभाव के अलग-अलग लक्षणों के लिए, जैसे क्रोध, लालच, परोपकार, खीझना, हंसमुख होना आदि के लिए जीनज की तरह ही 'मीमज'(Memes) होते हैं। चाहे अभी तक इन 'मीमज' का पता-ठिकाना नहीं चला है। उसके अनुसार 'मीमज' ही मानव का स्वभाव और सभ्यता तय करती हैं और इन्हें बाह्य वातावरण और मानव की परिस्थितियों के बदलने से बदला नहीं जा सकता। लेकिन अगर थोड़ा बारीकी में जाएँ, तो देखेंगे कि हर समाज और मानव समूह की सभ्यता प्रत्येक पीढ़ी के साथ बदलती रहती है, बल्कि एक मनुष्य के स्वभाव और सभ्यता में उसके जीवन काल में परिवर्तन आते रहते हैं। अगर डकिंज के अनुसार चलें तो हर अपराधी की सन्तान अपराधी होगी, शराबी की शराबी, गुस्सैल की सन्तान गुस्सैल, शर्मिले की संतान शर्मिली और हंसमुख की सन्तान हंसमुख और इससे भी बढ़कर मानव सारी उम्र एक जैसा ही बना रहेगा। पर हम देखते हैं ऐसा बिल्कुल नहीं होता, प्रतिदिन डकिंज साहेब का सिद्धांत मानव जीवन द्वारा गलत साबित किया जाता है। असल में इस प्रकार के सिद्धांत सिर्फ इसलिए निर्मित किये जाते हैं ताकि लोगों को मुख बनाया जा सके। दूसरे महारथी स्टीवन पिकर का 'विकासवादी मनोविज्ञान' का वर्णन भी कुछ इसी प्रकार का ही है। बस पिकर साहेब 'मीमज' के स्थान पर मॉड्यूल (Module) शब्द का प्रयोग करते हैं। इनके अनुसार भी मानव स्वभाव को, इसलिए मानव समाज को बदला नहीं जा सकता। इस सिद्धांत को मनोविज्ञानियों द्वारा पूर्णतया रद्द किया जा चुका है। ज्यादातर मनोविज्ञानी यह मानते हैं कि मानव स्वभाव चाहे कुछ हद तक वंशानुगत होता है पर ज्यादातर यह सामाजिक हालात और मानव के छोटी उम्र में पालन-पोषण, माता-पिता का प्यार, सेहत और शिक्षा पर निर्भर करता है।

इस सोच के कारण, बहुत समय तक यह समझा जाता रहा कि मानव के विकास दौरान सबसे पहले दिमाग का आकार बड़ा हुआ, उसने अपने हाथ का प्रयोग और सीधा खड़ा होना सीखा, इसी कारण से ही वह भाषा का प्रयोग करने लगा और अपने दिमाग द्वारा सोचने से ही वह समूह बनाकर, फिर मानव समाज के रूप में रहने लगा। पर, असल में, जैसाकि एंगेल्ज ने अपने आलेख 'वानर से मानव तक परिवर्तन में श्रम की भूमिका' में पेश किया था, सबसे पहले मानव के पूर्वज वृक्षों से उतरकर धरती पर चलने लगे जिस दौरान वे सीधा खड़े रहकर चलना सीखे। इस प्रकार अगले पंजे चलने से मुक्त होकर अन्य कार्यों के लिए प्रयुक्त होने लगे, जिस कारण मानव औजारों का प्रयोग करने लगा, जो बाद में भाषा और सामाजिक उत्पादन का कारण बना। इसके साथ ही हाथों का प्रयोग होने के कारण दिमाग का आकार बड़ा होने लगा, जो हाथों के विकास होने से कहीं बाद में जाकर हुआ। इन सच्चाईयों को आधुनिक जीवाश्म विज्ञान ने पूरी तरह स्पष्ट कर दिया है।

इसके बारे में ज्यादा विस्तार से जॉन पिकार्ड के आलेख "एंगेल्ज और मानव विकास" में पढ़ा जा सकता। जीनज में आनेवाली तब्दीलियों के जीव विकास में भूमिका के बारे में ब्रिटिश विज्ञानी जे. बी. एस. हालडेल ने भी अपने आलेखों में विस्तार सहित लिखा है।

हालडेल ने १९२९ में जीवन के पहले रूपों की उत्पत्ति के रहस्यों से आवरण उठाया । हालडेल के समय में ही, एक सोवियत विज्ञानी, अलेग्जान्द्र उपरेन भी उन्हीं नतीजों पर पहुँचा, इसलिए इस थियूरी को उभयनिष्ठ तौर पर उपरेन-हालडेल मॉडल कहा जाता है । इन दोनों विज्ञानियों ने अपने खोज कार्यों में द्वंदात्मक भौतिकवाद को लागू करते हुए इस सिद्धांत की खोज की । १९५३ में मिलर और युरे ने प्रयोगशाला में इस थियूरी को सही सिद्ध कर दिया । अब इस सिद्धांत को थोड़ा सुधार कर के.आर. एन.ए. मॉडल का रूप दे दिया गया है ।

द्वंदात्मक भौतिकवाद और जीव विकास

द्वंदात्मक भौतिकवादी नजरिये के जन्मदाता, मार्क्स और एंगेल्ज़, ने डार्विन की खोजों का पुरजोर समर्थन किया । इसके अलावा इसके अधूरेपन और भविष्य में इसके और विस्तारित होने की पेशनगोई भी की । डार्विन की खोजों ने मार्क्स-एंगेल्ज़ के भौतिकवादी नजरिये को प्रकृति में और स्पष्टता से सिद्ध किया । जनवरी १८६१ में मार्क्स ने एंगेल्ज़ को लिखा, “डार्विन की पुस्तक (जीवों की उत्पत्ति – अनु.) बहुत ही महत्वपूर्ण है और इसने मुझे वर्ग संघर्ष के लिए प्राकृतिक आधार प्रदान किया है । पर इसमें हमें विकास के अपरिपक्व तरीके को भी सहन करना पड़ता है । अपनी सभी सीमाओं के बावजूद, न सिर्फ उद्देश्यवाद (Teleology) (हर वस्तु के पीछे कोई न कोई उद्देश्य होता है. अनु.) की प्राकृतिक विज्ञान में विद्यमान धारणा पर निर्णायक चोट है, बल्कि अपने तार्किक मतलब की भी अच्छी तरह व्याख्या करती है ।”

‘डियूरिंग विरुद्ध’ पुस्तक में एंगेल्ज़ ने लिखा, “जीव विकास का सिद्धांत अभी अपने प्रारंभिक चरणों में है और इसमें कोई शक नहीं कि भविष्य की खोजें हमारी अब तक की जीव विकास संबंधी धारणाओं, डार्विन की खोजों समेत, को बदल देंगी ।”

इसी प्रकार एंगेल्ज़ ने ‘डाईलेक्ट्स ऑफ नेचर’ में भी डार्विन के ‘जीवित रहने के लिए संघर्ष’ के सिद्धांत का मूल्यांकन कुछ इस प्रकार किया, “डार्विन से पहले तक, उसके अबतक के पक्के अनुयायी भी प्रकृति में सामंजस्यपूर्ण सहयोग पर जोर देते हैं, कि कैसे पौधे, जीव, जंतुओं को खाद्य-खुराक और आक्सीजन प्रदान करते हैं और जीव जंतु पौधों को बदले में खाद, अमोनिया और कार्बोनिक एसिड (कार्बन डाईआक्साईड – अनु.) प्रदान करते हैं । जैसे ही डार्विन का सिद्धांत सामने आया, इन्हें हर जगह संघर्ष ही दिखाई देने लगा । दोनों ही नजरिये अपनी-अपनी सीमाओं के अन्दर ठीक हैं, पर दोनों ही एक समान तरह से एकतरफा और तुअस्बग्रस्त हैं । जैसे प्रकृति में निर्जीव वस्तुओं के संबंध अनुरूपता के टकराव दोनों तरह के होते हैं, वैसे ही सजीव वस्तुओं में भी सचेतन और अचेतन सहयोग के साथ-साथ सचेतन और अचेतन संघर्ष भी होता है । इसलिए, प्रकृति के संबंध में, सिर्फ संघर्ष को ही सबकुछ मान लेना ठीक नहीं । बल्कि ऐतिहासिक जीव विकास और जटिलता की पूरी दौलत को एक छोटे से और एकतरफा वाक्यांश ‘जीवित रहने के लिए संघर्ष’ में बाँधने की इच्छा करनी बचकाना ही होगी । इसका कुछ भी मतलब नहीं है ।

‘डार्विन का जीवित रहने के लिए संघर्ष’ का सिद्धांत समाज में प्रचलित अवधारणाओं जैसे सबकी सबके खिलाफ जंग, की हौबिस की थियूरी, मुकाबले की बुर्जुआ अर्थशास्त्र की अवधारणा और माल्थस की जनसंख्या संबंधी अवधारणा का प्रकृति विज्ञान में लागू करने का प्रयत्न हैं । जब ऐसा करके सफलता हासिल कर ली गयी है (बेशक इस मूलभूत आधार, माल्थस की थियूरी पर आज तक प्रश्न चिह्न लगा हुआ है), यह आसान हो जाता है कि प्रकृति विज्ञान की अवधारणाओं को समाज के इतिहास पर लागू कर दिया जाये और इसे बिलकुल सीधे-सादे तरीके से कहा जाता है कि इस तरह ये प्रस्तुतियां समाज के चिरस्थायी नियमों के तौर पर सिद्ध की जा चुकी हैं । (मार्क्स-एंगेल्ज़, सम्पूर्ण रचनाएँ, जिल्द 25, पेज, 583-584, अंग्रेजी एडिशन 1987, प्रगति प्रकाशन.)

“जीवित रहने के लिए संघर्ष – सबसे बड़ी बात यह है कि इसे पौधों और जनसंख्या की अधिक बढ़ोतरी तक ही सीमित रखा जाये, जोकि पौधों और निम्न जंतुओं के विकास के कुछ चरणों में वास्तव में होता है । परन्तु इन्हें उन परिस्थितियों में, जिसकी जीव-जंतुओं और पौधों को नए वातावरण पर भू-

परिस्थितियों वाले नए भूभागों में परवास से बिलकुल अलग रखा जाना चाहिए जिनमें जीवों की प्रजातियाँ बदलती हैं, पुरानी मर जाती हैं और नई विकसित उनका स्थान ग्रहण कर लेती हैं, जनसँख्या में अधिक बढ़ौतरी हुए बिना ही। नए वातावरण में जो जीव स्वयं को ढाल लेते हैं, जीवित रह जाते हैं और लगातार बदलावों से स्वयं को एक नई प्रजाति में विकसित कर लेते हैं पर ज्यादा स्थिर जीव मर जाते हैं और विलुप्त हो जाते हैं, साथ ही मंजोले जीव-रूप भी विलुप्त हो जाते हैं। यह सब कुछ किसी भी माल्थसवाद के बिना संभव है और होता है भी है, और अगर यह लागू भी होता है तो यह उस प्रक्रिया को, ज्यादा से ज्यादा थोड़ा तेज कर देता है। (वही पेज 582-83)

“चलें तर्क करने के लिए ‘जीवित रहने के लिए संघर्ष’ नाम के वाक्यांश को मान भी लें। एक जानवर ज्यादा से ज्यादा इकठ्ठा कर सकता है, पर इन्सान तो उत्पादन करता है। वह जीवित रहने के साधन तैयार करता है, ज्यादा विस्तारित शब्दों में, जोकि प्रकृति ने उसके बिना न बनाये होते। यह जानवरों पर लागू होनेवाले नियमों को मानव समाज पर अपरिपक्व तरीके से लागू करना मुश्किल बना देता है। उत्पादन के कारण जल्दी ही ‘जीवित रहने का संघर्ष’ शुरू हो जाता है, पर यह संघर्ष जीवित रहने के साधनों के लिए नहीं, बल्कि मनोरंजन और विकसित होने के साधनों के लिए होता है। यहाँ – क्योंकि विकसित होने के साधन भी सामाजिक तौर पर पैदा होते हैं – जानवरों पर लागू होनेवाले नियम पूरी तरह से आधारहीन हो जाते हैं। अंत में, पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली में, उत्पादन का स्तर इतना ऊँचा हो जाता है कि समाज जीवित रहने, मनोरंजन और विकसित होने के साधनों का अब और पूरी तरह उपयोग नहीं कर सकता क्योंकि उत्पादन करने वालों के बड़े हिस्से को इन साधनों के उपयोग करने से गैर-कुदरती तरीके से और जबरन हटा दिया जाता है। और इसीलिए संतुलन कायम रखने के लिए एक संकट (आर्थिक संकट – अनु.) प्रत्येक दस वर्षों बाद न सिर्फ जीवित रहने के, मनोरंजन और विकसित होने के साधन, बल्कि उत्पादन शक्तियों के एक बड़े हिस्से का भी विनाश कर देता है। इस प्रकार, यह ‘जीवित रहने के लिए संघर्ष’ कुछ इस तरह का रूप धारण कर लेता है – बुर्जुआ समाज द्वारा पैदा की गई वस्तुएं और उत्पादक शक्तियों की पूंजीवादी प्रणाली के विनाशकारी, विध्वंशकारी प्रभावों से रक्षा करने के लिए, सामाजिक उत्पादन और वितरण का अधिकार, इस कार्य के लिए अयोग्य हो चुकी पूंजीपति जमात के हाथों से छीन लें और इसको उत्पादन करनेवाले जन-समूहों को सौंप दें -और यह है समाजवादी क्रांति।

“वर्ग संघर्षों के क्रमिक सिलसिले के तौर पर इतिहास का बोध, इनको ‘जीवित रहने के संघर्ष’ के बहुत कम विभेदन वाले चरणों तक सीमित कर देने से विषय-वस्तु और गंभीरता के पक्ष के लिहाज से कहीं अधिक अमीर है। (वही, पेज -584 -85)

“डार्विन को पता नहीं था कि उसने मानवता, विशेषतया अपने देववासियों पर कितना कड़वा व्यंग्य लिख दिया है, जब उसने यह दिखा दिया कि ‘मुक्त प्रतिस्पर्द्धा’ जीवित रहने के लिए संघर्ष जिसको अर्थशास्त्री सबसे ऊँची ऐतिहासिक उपलब्धि समझते हैं, जानवरों की दुनिया में एक आम स्थिति है। जैसे उत्पादन की क्रिया ने मानव को अन्य जानवरों से जीव-वैज्ञानिक तौर पर विभेदन प्रदान किया, उसी प्रकार सामाजिक पक्ष से भी; सिर्फ चैतन्य तौर पर सामाजिक उत्पादन के ढांचे, जिसमें उत्पादन और वितरण योजनाबद्ध तरीके से होगा, मानवता को अन्य जानवरों से श्रेष्ठता प्रदान करेगी। इतिहास विकास इस प्रकार को दिन-प्रतिदिन आवश्यक ही नहीं बना रहा, बल्कि अधिकाधिक संभव भी बना रहा है। (वही, पेज -331)

जैसे एंगेल्ज ने ‘डियूरिंग विरुद्ध’ में यह कहा था कि जीव विकास के सिद्धांत अभी और विकसित होंगे, उसी प्रकार डार्विन को भी अपने सिद्धांत में विद्यमान खामियों का अहसास था।

जीवाश्म विज्ञान के अनुसार, कैंबरियन युग (६००-७०० मिलियन वर्ष) से पहले की चट्टानों में जीवों के बहुत कम अंश मिलते हैं और वह भी ‘परोकेरीआईक’ नाम के आरंभिक जीव-रूप ही मिलते हैं। पर इससे बिलकुल बाद की चट्टानों में एकदम ही अलग तरह के बहुभांति जीव-रूप मिलते हैं। इनमें वर्तमान में मौजूद जीवों के लगभग बहुत जीव-रूप मिल जाते हैं। इसको ‘कैंबरियन धमाका’ कहा जाता है। यह ध्यान रखना चाहिए कि यह ‘कैंबरियन धमाका’ कोई रातों-रात हो गयी घटना नहीं थी, बल्कि कई मिलियन वर्षों में होनेवाली घटना थी, पर भू-वैज्ञानिक तौर पर देखा जाये तो पृथ्वी की उम्र

के मुकाबले यह घटना एक धमाके की तरह ही तेजी से होनेवाली घटना थी । इसके पश्चात् अनेक प्रजातियाँ अस्तित्व में आ गयीं । डार्विन के समय भी इस तथ्य का ज्ञान था । बाद में यह भी सिद्ध हो गया कि समय-समय पर पृथ्वी पर कुछ इस प्रकार की परिस्थितियाँ पैदा होती हैं, चाहे ये परिस्थितियाँ कई मिलियन वर्ष लंबी होती हैं, पर फिर भी भू-वैज्ञानिक तौर पर बहुत छोटी होती हैं, जिस दौरान पृथ्वी पर उस वक्त मौजूद बहुत सारी प्रजातियाँ विलुप्त हो जाती हैं और उनके स्थान पर नई प्रजातियाँ पैदा हो जाती हैं जो समय के साथ धीरे-धीरे विकास करती हैं, विकास के इस चरण में, जब नई प्रजातियों के अस्तित्व में आ जाने के बाद के समय में 'प्राकृतिक चुनाव' अहम भूमिका निभाता है । इस तरह जीवों की प्रजातियों के तेजी से विलुप्त होने की अब तक छः घटनाएँ हो चुकी हैं ।

सबसे बड़ी विलुप्त होनेवाली स्थिति २५० मिलियन वर्ष पहले पेरिअन्योक-मीजोयोक युगों के बीच पैदा हुई जब जल और थल दोनों जगहों के ५० फीसदी जंतुओं और रेंगने वाले ८० फीसदी जंतुओं की प्रजातियाँ विलुप्त हो गयीं । इस प्रकार की अंतिम घटना ६३ मिलियन वर्षों पहले हुई जिसके परिणामस्वरूप अन्य अनेक प्रजातियाँ समेत डाइनासोर भी विलुप्त हो गये । पर ये घटनाये जीव विकास के राह में रुकावट नहीं बनती हैं, बल्कि जीव विकास को नए और उच्च धरातल पर ले जाती हैं । क्योंकि इन घटनाओं से नई प्रजातियाँ अस्तित्व में आती हैं जो पहले वाली प्रजातियों के मुकाबले अधिक विकसित होती हैं ।

'कैंब्रियन धमाके' की डार्विन अपनी खोजों के आधार पर व्याख्या करने में असफल थे, पर उस समय डार्विन ने यह कहा कि किसी कारण जीवाश्म संबंधी मानव जानकारी अभी अधूरी है और भविष्य में यह जानकारी मुकम्मल हो जाएगी । पर समय के साथ यह पता चला कि जीवाश्म संबंधी जानकारी बिलकुल सही थी और जीवाश्म में अधूरापन इतना भी अधिक नहीं है कि 'कैंब्रियन धमाके' को सिर्फ जानकारी का अधूरापन कह कर काम चला लिया जाये । इसी प्रकार कई बार प्रजातियों के बीच के रूप भाव 'लिंग प्रजाति' भी नहीं मिलती, उन स्थितियों में डार्विन के सिद्धांतों के अनुसार नई प्रजाति की उत्पत्ति की व्याख्या करनी मुश्किल हो जाती है ।

इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, अमरीका के भू-विज्ञानी स्टीफन जे गोल्ड और नीलज़ ऐलड्रिज़ ने १९७१ में जीव विकास का नया सिद्धांत पेश किया, जो न सिर्फ डार्विन के सिद्धांत के महत्व को बनाये रखता है, बल्कि इस और अधिक अमीर बनाते हुए जीव विकास के सिद्धांत को इस काबिल बना देता है, जिससे 'कैंब्रियन धमाका' और तेजी से प्रजातियों के विलुप्त होने से पैदा होनेवाली घटनाओं की सटीक व्याख्या होती है । इस सिद्धांत का नाम है - 'पंकचूएटिड इक्यूलेबीरीयम'।

गोल्ड और ऐलड्रिज़ ने अपने निबंधों में यह काफी हद तक सिद्ध कर दिया कि जीव विकास की प्रक्रिया हर समय एक ही रफ्तार से सीधी रेखा में नहीं चलती बल्कि इस प्रक्रिया में धीमें और लटकते हुए अंतरालों में कुछ पड़ाव ऐसे आते हैं जब जीव विकास की प्रक्रिया तीव्र हो जाती है । इस तीव्र दौर में धीमें विकास के दौरान जमा हुए मात्रात्मक परिवर्तन गुणात्मक परिवर्तनों में बदल जाते हैं । गोल्ड के अनुसार जीव विकास सदैव प्रगतिशील ही नहीं होता, बल्कि कई बार विपर्ययवादी भी होता है, क्योंकि कई जीव जीवित रहने के लिए दूसरे जीवों के परजीवी बन जाते हैं, जैसे की वृक्षों पर लटकती हुई अमरबेल, अलग-अलग परजीवी कीड़े आदि ।

डार्विन इस प्रकार की संभावना से अनजान नहीं थे । 'जीव की उत्पत्ति' के पांचवें एडिशन में डार्विन लिखते हैं, "समय के जिन खण्डों में प्रजातियों में परिवर्तन आते हैं, वे प्रजातियों के लगभग स्थिर रहनेवाले समय खण्डों के मुकाबले छोटे होते हैं ।" चार्ल्स डार्विन जीवों की उत्पत्ति, १८६९ लन्दन, जॉन मरे, पांचवां एडिशन, पेज -५५१)

इस सिद्धांत के प्रस्तुत करने के समय से ही गोल्ड और ऐलड्रिज़ का बाकी बहुत सारे विज्ञानियों द्वारा निरंतर विरोध होता रहा है क्योंकि छलांगों द्वारा जीव विकास का सिद्धांत पूंजीवाद के बंधक चाकर गुलामों को हजम नहीं होते और वे धीमें और लटकते हुए बदलावों के सिद्धांत को ही एकमात्र सही सिद्धांत सिद्ध करने पर तुले रहते हैं । इस विरोधी शिविर में एक बार रिचर्ड डाकिनज़ और जॉन मेरिनाई स्मिथ प्रमुख रहे हैं । अपने मृत्यु के वर्ष, २००२ तक, गोल्ड ने अपने सिद्धांत की डटकर

हिमायत की और अन्य तरह के शंकों का निवारण किया। चार्ल्स डार्विन के बाद, स्टीफन जे गोल्ड को जीव विकास के क्षेत्र में दूसरा सबसे बड़ा नाम माना जाता है ।

गोल्ड के सिद्धांतों की रोशनी में आज, छात्रांगों द्वारा जीव विकास के सिद्धांत को अधिकाधिक मान्यता मिल रही है और जीव विकास विज्ञान के क्षेत्र में ऐसे तरीकों की खोज हो रही है जो इस सिद्धांत को और अधिक स्पष्ट कर रहे हैं ।

गोल्ड अपनी पुस्तक 'पांडाज थंब' में लिखते हैं, " सोवियत यूनियन में विज्ञानियों को एक अलग तरह की दार्शनिक शिक्षा मिलती है - एंगेल्स द्वारा, हीगेल से लेकर, और विकसित किये गये द्वंदात्मक नियमों की शिक्षा। द्वंदात्मक नियम स्पष्ट तौर पर धीमे-तेज विकास के हामी हैं। वे मात्रा के गुणों में परिवर्तन की बात करते हैं । यह अजीब लग सकता है, पर ये बताते हैं कि किसी प्रणाली में धीरे-धीरे इकठ्ठे होनेवाले परिवर्तन या तो दबाव के परिणामस्वरूप वह प्रणाली ऐसी स्थिति में पहुँच जाती है, जब एकदम छात्रांग द्वारा परिवर्तन होता है। पानी को गर्म करो, यह उबल जायेगा, मजदूरों को अधिकाधिक दबायो, क्रांति हो जाएगी । ऐलड्रिज और मुझे यह जानकर बहुत हैरानी हुई कि बहुत पहले रूसी जीवाश्म विज्ञानी भी हमारी 'पंकचूएटिड इकूलेबीरीयम' मॉडल जैसे जीव विकासी सिद्धांतों की धारणाएं रखते हैं । "

अपनी पुस्तक 'डार्विन के बाद अब तक' में, गोल्ड, एंगेल्स के आलेख 'वानर से मानव तक परिवर्तन में श्रम की भूमिका' का वर्णन करते हुए लिखते हैं, " असल में, उन्नीसवीं शताब्दी में एक बहुत ही शानदार आलेख प्रकाशित हुआ, जिसके लिखनेवाले के बारे में जानकर, बहुत से पाठक हैरान हो जायेंगे - फ्रेडरिक एंगेल्स । (बेशक यह जानकर, कि एंगेल्स भी प्राकृतिक विज्ञान में गहरी दिलचस्पी रखते थे और वे अपने दर्शन 'द्वंदात्मक भौतिकवाद' को एक मजबूत आधार पर निर्मित करते हैं । वे अपनी पुस्तक 'प्रकृति में द्वंदावाद' को पूरा न कर सके) उनकी मृत्यु के बाद, १८९६ में एंगेल्स द्वारा लिखित 'वानर से मानव तक परिवर्तन में श्रम की भूमिका' प्रकाशित हुई पर पश्चिमी विज्ञान पर इसका कोई असर न हुआ ।" क्योंकि उनके अनुसार पश्चिमी सोच में पक्षपात बहुत गहराई तक पैठ कर चुका था ।

असल में देखा जाये तो डार्विन के सिद्धांतों पर होनेवाले सैद्धांतिक हमले असल में द्वंदात्मक भौतिकवादी दर्शन को नकारने के नाकाम परन्तु योजनाबद्ध प्रयत्न हैं । आज की परिस्थितियों में परजीवी हो चुके पूंजीवाद को सबसे अधिक खतरा मार्क्सवादी भौतिकवादी दर्शन से है क्योंकि यह वह दर्शन है जो समाज को गति में दिखाता है और वर्णन करता है कि प्रत्येक वस्तु गति में है । जैसे जीव विकास एक निरंतर गतिमान क्रिया है, वैसे ही, मानव समाज भी निरंतर गतिमान है । मानव समाज में भी प्राचीन मिट जाता है और नया उसका स्थान ग्रहण कर लेता है । इसी तरह आरंभिक कबीलाई समाजों के स्थान को गुलामदारी प्रबंध ने ग्रहण किया और फिर सामंतवाद और पूंजीवादी प्रबंध । प्रत्येक प्रबंध अपनी उम्र भोगकर इतिहास के रंगमंच से रुखसत हो गया और उसके स्थान को नये प्रबंध ने संभाल लिया । पूंजीवाद के चाकर इस सच्चाई को नकारने के लिए, हर उस सोच, वैज्ञानिक खोज या मानवीय कोशिश को सबसे पहले दबाने की कोशिश करते हैं, अगर ऐसा नहीं होता है, तो उसकी इस तरह से व्याख्या करने की कोशिश करते हैं कि उसके अन्दर का भौतिकवादी तत्त्व खत्म हो जाये और वह पूंजीवादी प्रबंध को सदैव से न्यायोचित ऐलान करने लगे ।

उन्नीसवीं शताब्दी में, जब पूंजीवाद के उभार का दौर था, उस वक्त पूंजीवादी चाकरों की कोशिश होती थी कि किसी वैज्ञानिक खोज से होनेवाले फायदा अधिकाधिक उठाया जाये और इस खोज से आम लोगों तक पहुँचने वाली भौतिकवादी चेतना को किसी न किसी तरह से दूर किया जाये । इससे भी अधिक, अगर हो सके तो उन खोजों को पूंजीवादी-चिरस्थायी तौर पर लोगों की नजरों में परिपक्व सिद्धांत बनाने के लिए इस्तेमाल किया जाये । इस प्रकार फासीवाद को जायज ठहराने के लिए पूंजीवादी चाकरों ने विज्ञान का भरपूर इस्तेमाल किया । नस्ल सुधारने को एक विज्ञान का दर्जा दिया गया । इस तथाकथित विज्ञान के आधार पर उन्नीसवीं शताब्दी के पूरार्द्ध में अमरीका में २०,००० लोगों की जबरन नसबंदी कर दी गयी और नाज़ी जर्मनी में ३,७५,००० लोगों को नपुंसक बना दिया गया । इस काम को सिरे चढाने के लिए बाकायदा कानून बनाये गये । अमरीका के लगभग सभी राज्यों में कानून बनाकर नस्ल सुधारने के विभाग तक बनाये गये ।

विज्ञान के नामपर इस प्रकार के मानवता विरोधी कारनामे बाद में भी जारी रहे । बेशक उपरोक्त किस्म के नस्ल सुधार को विज्ञान द्वारा रद्द किया जा चुका है, पर यह अलग-अलग रूपों में सामने आने लगा जैसेकि साइको सर्जरी । इसके अनुसार सामाजिक समस्याओं का इलाज भी दिमाग का आपरेशन करके किया जा सकता है । इस तरह के ही दो तथाकथित विज्ञानी, वर्तमान मार्क और फ्रैंक इरविन ने यह सुझाव भी पेश कर दिया कि शहरों में होनेवाले दंगे भी दिमागी परेशानी के कारण होते हैं और इसका इलाज झुग्गियों में रहनेवाले लोगों के नेताओं के आपरेशन द्वारा हो सकता है और ऐसा किया भी गया । ऐलन वूड्स और टेड ग्रांट के अनुसार – १९७१ में, अमरीका में ऐसे ही लोगों का इलाज करने के लिए उचित 'बीमारों' की सूची मांगी गयी । आपरेशन द्वारा इलाज के लिए भेजे गये आदमियों में अप्रैल, १९७१ के कामगारों की हड़ताल के नेताओं में से एक शामिल था । ये हैं पूंजीवादी चाकरों के कारनामे और वैज्ञानिक खोज !

जीव विज्ञान से बाहर दूसरे विज्ञानों में भी यही स्थिति है । क्वांटम भौतिकी के दार्शनिक नतीजे 'कोपनहेगन व्याख्या' इसकी ज्वलंत मिसाल है । जैसे-जैसे पूंजीवाद और अधिक परजीवी होता जा रहा है, उतना ही अधिक यह विज्ञान-विरोधी भी होता जा रहा है । पहले तो यह विज्ञान से निकलने वाले भौतिकवादी परिणामों को बिगाड़ता था, पर अब तो यह विज्ञान के विकास में ही रूकावट बनता जा रहा है ।

पूंजीवाद ने पृथ्वी के गर्भ से निकलने वाले जीवाश्मों को पण्य (commodity) बना दिया है । जीवाश्मों की पूरी दुनिया में फैली एक मंडी है । पूरी मानवता की धरोहर, ये जीवाश्म कुछ लोगों की व्यक्तिगत सम्पत्ति बनते जा रहे हैं । ऐसा एक उदाहरण एक ४७ मिलियन वर्ष पुराने एक कैमूर के जीवाश्म का है । यह अभी-अभी 'ढूँढा' गया । यह जीवाश्म दूध पिलाने वाले ऊपरी श्रेणी के और आरंभिक दूध पिलाने वाले प्राणियों के बीच एक महत्वपूर्ण लिंक है । पर यह जीवाश्म १९८३ से लेकर २५ वर्षों तक एक जीवाश्म इकठ्ठे करने के शौकीन व्यक्ति की व्यक्तिगत सम्पत्ति बना रहा । इस प्रकार और भी जीवाश्मों को, जो व्यक्तिगत सम्पत्ति हैं, किराए पर खोज-कार्यों के लिए दिया जाता है ।

मेडिकल क्षेत्र के बारे में तो जितना कहा जाये उतना ही कम है । दवा कम्पनियां, उस खोज-कार्य जिसमें से मुनाफे की संभावना कम हो या मुनाफे पर चोट करता हो, पर धेला भी नहीं खर्च करतीं । ऐसे कार्यों के लिए अक्सर लोगों को जेब से खर्च उठाना होता है या फिर सरकारों के सामने नाक रगड़नी पड़ती है । बहुत से ऐसे खोज-कार्य बीच में ही बंद हो जाते हैं या फिर बहुत धीमी गति से आगे बढ़ते हैं ।

स्टेम सैल रीसर्च का भी इसीलिए विरोध हो रहा है । बेशक यह विरोध नैतिक और धर्म के चोगे के नीचे हो रहा है । इसका विरोध करनेवाले भी वही हैं, जो समलैंगिक और गर्भपात संबंधी कानूनों का विरोध करते हैं । और इन फासीवादी समूहों को आशीर्वाद किसका है, यह भी सबको पता है ।

इसी प्रकार १९९० में शुरू हुई, बैटरी से चलनेवाली बिजली की कार की परियोजना भी तेल कंपनियों, ऑटो कंपनियों और अमरीका सरकार की मिलीभगत से ठप होकर रह गयी है और यह कार कभी भी सड़क पर नहीं उतर सकी । इस बैटरी से चलनेवाले व्हीकल ने जहाँ प्रदुषण को कम करना था, वही तेल की खपत भी कम करनी थी, पर यह सब तेल कम्पनियों को किस तरह बर्दाश्त होता, इसलिए मिलमिलाकर पूरी परियोजना को कोल्ड स्टोर में रख दिया गया ।

इस प्रकार साफ़ है कि लोगों में भौतिकवादी चैतन्य के प्रसार को रोकने के लिए और इसे कुंठित करने के प्रयासों की एक महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में, जीव विकास के सिद्धांत पर, जोकि उतने ही प्रमाणों से सिद्ध हो चुके हैं जितने प्रमाणों से यह सिद्ध हो चुका है पृथ्वी प्लेट जैसी नहीं, बल्कि गेंद जैसी, सूर्य पृथ्वी के नहीं, पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है और सूर्य और चन्द्र ग्रहण किसी राहू-केतू के कारण नहीं बल्कि सूर्य, पृथ्वी और चन्द्रमा के एक रेखा में आ जाने से लगते हैं, विवाद पैदा कर वैज्ञानिक प्राप्तियों और सिद्धांतों के उन क्रांतिकारी अंशों को कमजोर करने की कोशिशें हो रही हैं जो किसी भी वस्तु के चिरस्थाई होने की अवधारणा के परखचे उड़ा देते हैं । इसके साथ ही विज्ञान और दर्शन को मानवता की भलाई के लिए उपयोग के स्थान पर पूंजीवाद की पूरी अधिसंरचना इन्हें मुनाफे की चौहद्दी में कैद करने और श्रमिक लोगों की अधिकाधिक रत निचोड़ने के साधन मात्र बनाने के लिए दिनरात

पंजों के बल खड़ी रहती है । इसलिए वर्तमान समय में, न्याय और समानता पर आधारित शोषण रहित समाज के सृजन का स्वप्न देखनेवाले लोगों के लिए यह जरूरी है कि भौतिकवादी वैज्ञानिक चैतन्य के हक में खड़े होने और डार्विन के सिद्धांतों समेत विज्ञान के हर क्षेत्र में हो रहे विचारवादी हमलों का और वैज्ञानिक तथ्यों को विकृत करके पूंजीवाद की सेवा करनेवालों का मुंह-तोड़ जवाब देने के लिए तैयारी करें ।

पंजाबी पत्रिका, नवें समाजवादी इन्कलाब दा बुलारा 'प्रतिबद्ध' के जनवरी, २०१० अंक से आभार सहित ।